International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 3; May 2017; Page No. 03-06

हिन्दी मिथकीय उपन्यासों में नरेन्द्र कोहली

[1] रेखा रानी, [2] प्रो0 कलानाथ मिश्र

[1] शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार, भारत।
[2] एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, ए0 एन0 कॉलेज, पटना (मगध विश्वविद्यालय), बिहार, भारत।

सारांश
हिन्दी उपन्यासों में आरंभ से ही मिथकों पर आधृत कृतियों का सृजन होता रहा है। ये मिथक उपन्यासों द्वारा एक लम्बे समय से जीवन एवं जीवन संबंधी समस्याओं को शाश्वत् दृष्टि से प्रस्तुत करने का माध्यम बनते रहें हैं। प्रेमचन्द पूर्व काल और प्रेमचन्द काल में संस्कृति की श्रेष्ठता को प्रमाणित करने के उद्देश्य से जिन मिथकीय उपन्यासों की रचना हुई, उसमें आधुनिक जीवन की आलोचना न होकर पुराने विवरणों की सजावट अधिक दिखी। मिथक और यथार्थ की समकालीन संगति के अभाव के परिणामस्वरूप मिथक आधृत उपन्यास, मिथकीय उपन्यास की श्रेणी मे स्थापित नहीं हो सके। सन् 1970 के पश्चात् सृजित उपन्यासों में मिथकों में निहित नवीन अर्थ संभावनाओं की खोज की गई तथा इन मिथकों के माध्यम से समकालीन परिस्थितियों के यथार्थ को बौद्धिक धरातल पर उकेरने का प्रयास किया गया। स्वातंत्र्योत्तर काल में की गई इन प्रयासों में महत्वपूर्ण योगदान रहा ''डा0 नरेन्द्र कोहली जी का''। नरेन्द्र कोहली जी ने पौराणिक कथा–वृत को समकालीन संदर्भों में समन्वयात्मक रूप से प्रस्तुत किया हैं। उन्होने अपने उपन्यास 'अभ्युदय' एवं 'महासमर' में पौराणिक युग के आदर्श स्तंभ श्रीराम और श्रीकृष्ण, जो कथावृत के लिए चिर नवीन हैं, प्रत्येक काल, युग और परिवेश में प्रत्येक समाज के लिए प्रेरणा–स्त्रोत हैं, आदर्श हैं और मानव समाज की शक्ति हैं, के जीवन चरित को वैज्ञानिकता की कसौटी पर रखकर मनोवैज्ञानिकता के साथ प्रस्तुत कर मिथकीय उपन्यास को एक नई परिभाषा प्रदान की हैं। कोहली जी ने अपनी कृति 'अभ्युदय' (दो खण्ड) के 'दीक्षा', 'अवसर', संघर्ष की ओर' तथा 'युद्ध भाग–1' एवं 'युद्ध भाग–2' नामक उपशीर्षक में समग्र मिथकीय कहीं जाने वाली रामकथा का युगानुकुल वर्णन कर 'रामकथा' की पुनर्व्याख्या करने का प्रयास किया है। वहीं कृष्ण कथा पर आधृत उनकी कृति 'महासमर' के आठ खंडों में, कृष्ण के अमरत्व एवं ईश्वरत्व के चरित्र के साथ ही आधुनिक, समसामियक, प्रासंगिक, मनोवैज्ञानिक और संवेदनशील मानव का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। कोहली जी के 'कृष्ण' गीता के संदेष्टा भी हैं और आधुनिक युग के सांसारिक मायावी प्रपंचों के संद्रष्टा भी।

मूल शब्दः मिथक, यथार्थ, धार्मिक–पुनर्जागरण, आदर्शवाद, अभ्युदय, दीक्षा।

प्रस्तावना
हिन्दी साहित्य की अन्य गद्य–विधाओं की भांति उपन्यास का आविर्भाव भी भारतेन्दु 'काल' में हुआ। हिन्दी नाटकों एवं काव्यों की ही भांति हिन्दी उपन्यासों में शुरू से ही मिथकों पर आधारित कृतियों का सृजन होता रहा है। ये मिथक उपन्यासों द्वारा एक लम्बे समय से जीवन एवं जीवन संबंधी समस्याओं को शाश्वत् दृष्टि से प्रस्तुत करने के माध्यम बनते रहे हैं। हिन्दी उपन्यास के मिथकीय पात्र एवं प्रसंग युगीन परिवेश के अनुरूप ढ़लते गए तथा बहुयामी प्रयोगों के माध्यम बनते गए।

हिन्दी उपन्यास के विकास के प्रथम काल 'पूर्व प्रेमचन्द काल' में उपन्यास मुख्यतः मनोरंजन प्रदान करने वाले साधन थे। 'प्रणय संबंधी' एवं 'तिलस्मी और ऐयारी' जैसे उपन्यासों की रचना अत्याधिक हुई। इन रचनाओं में कौतूहल पैदा करने वालें पात्रों एवं प्रसंगों की कल्पनाएं की गईं तथापि ''नीति–उपदेश प्रधान उपन्यासों के अंतर्गत अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के तीव्र आकर्षण से प्राचीन साहित्य तथा संस्कृति के प्रति उदासीन होती जा रही भारतीय जनता में परम्परागत भारतीय आदर्शों की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु मिथकीय पात्रों एवं प्रसंगों के आधार पर आदर्शवादी पौराणिक उपन्यासों का सृजन किया गया। इनमे से रामचन्द्र वर्मा कृत 'सीताजी की जीवनी (1909), इन्दु शर्मा उपाध्याय कृत 'अंगराज कर्ण(1912)' एवं 'रणवीर अभिमन्यु', द्वारिका प्रसाद शर्मा 'चतुर्वेदी' द्वारा रचित 'सावित्री –सत्यवान' (1912) एवं 'भीष्म पितामह' (1914), चिमन बाल वैश्य द्वारा सृजित 'राजा युधिष्ठिर का जीवन–चरित (1912) एवं 'वचन प्रतिपालक महाराज दशरथ का जीवन चरित' (1914), रामनरेश त्रिपाठी द्वारा लिखित 'दमयंदती चरित' (1914) तथा नरोत्तम व्यास कृत 'प्रह्लाद' (1915) आदि उपन्यास विशेष उल्लेखनीय है। अतः राष्ट्रीय चिन्तक उपन्यासकारों ने नीतिपरक उपदेश देने के लिए काल्पनिक पात्रों एवं प्रसंगों को अपनी रचनाओं में स्थान न देकर मिथकीय पात्रों और प्रसंगों को अधिक प्रभावकारी समझते हुए स्थान दिया। मिथकीय पात्र और प्रसंगों के प्रति सामान्य पाठक के मन में पहले से ही श्रद्धा के भाव थे। अतः श्रद्धास्पद मिथकीय पात्रों के जीवन का पुनराख्यान आस्थावान पाठकों को सहज ही अनुकरण की प्रेरणा दे सकता था। इस प्रकार 'पूर्व प्रेमचन्द काल' के उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में मिथक का प्रयोग तद्युगीन जन–समूह को उपदेश देने मात्र के लिए किया।

हिन्दी उपन्यास के द्वितीय काल 'प्रेमचंद काल' में उपन्यास कल्पना, कौतूहल एवं चमत्कार प्रदर्शन के इन्द्रजाल से निकलकर सामाजिक–पुनर्निर्माण एवं राष्ट्रीय जागरण का माध्यम बन कर, मानव जीवन तथा सामाजिक परिवेश के यथार्थ का उद्घाटन करने लगे, फिर भी उपन्यासों में मिथक संबंधी उपदेशात्मकता की पूर्ववर्ती प्रवृति ज्यों की त्यों बनी रही। इस युग में मिथकीय पात्रों एवं चरित्रों के आदर्शवादी चित्रण पर आधारित उपन्यासों का सृजन किया गया। तदयुगीन परिवेश में बढ़ती हुई राष्ट्रीयता की भावना के कारण अतीत के गौरव को उद्घाटित कर, वर्तमान को सुधारने एवं भारतीय जनमानस में आदर्श की प्रतिस्थापना, इन मिथकों द्वारा की

गई। इनमें 'रामकृष्ण उपासनी' कृत 'राजर्षि ध्रुव चरित' (1916), द्वारिका प्रसाद शर्मा 'चतुर्वेदी' कृत 'दशरथी राम' (1916) एवं 'देवर्षि नारद' (1931), मणिराम शर्मा कृत 'महारानी दमयंती' (1918) तथा 'महारानी शैव्या का जीवन चरित्र' (1918), ईश्वरी प्रसाद शर्मा रचित 'सीता' (1920) एवं 'शकुंतला' (1921), नरोत्तम व्यास द्वारा रचित 'परशुराम' (1917) एवं 'लवकुश' (1921), गणेश दत्त शर्मा द्वारा रचित 'वीर कर्ण' (1921), 'वीर अर्जुन' (1925), कार्तिकेय चरण मुखोपाध्याय कृत 'सुभद्रा' (1927) एवं 'सावित्री सत्यवान' (1932) आदि उपन्यास मिथकीय उपन्यास के रूप में देखे जा सकते हैं, जो चरित्र–परिशोधन के लिए लिखे गए। इस प्रकार 'प्रेमचन्द काल' में मिथकीय उपन्यास 'पूर्व प्रेमचन्द काल' की भांति ही गौण रूप मे रचनाओं में देखे गए। कुछेक उपन्यासकारों ने ही इन मिथकों का प्रयोग कर, इसके माध्यम से तत्कालीन जनमानस के चरित्र–परिशोधन हेतु उपदेश देने की कोशिश की।

हिन्दी उपन्यास के तृतीय काल प्रेमचंदोतर काल में भी स्वतन्त्रता से पूर्व मिथकों पर आधारित उपन्यास अपेक्षतया गौण ही रहें किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् वातावरण अनेक अंतर्विरोधों से ग्रस्त हो गया और भारतीय जनता जहाँ एक आदर्श समाज की कामना कर रही थी, वहाँ उन्हें मानवीय मूल्यों का विघटन होता हुआ दिखाई दिया। विभाजन की त्रासदी व अन्य क्षेत्रों में उत्पन्न चुनौतियों के परिणाम स्वरूप मोह भंग और स्वप्न भंग की स्थिति ने भारत के तत्कालीन साहित्यकारों को स्वाभाविक रूप से उत्तेजित कर दिया। उपन्यास लेखन में एक नई क्रांति देखने को मिली। इसका परिणाम यह हुआ कि ''स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास में कथा–साहित्य की दिशा समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार, अनाचार, शोषण वृति और मूल्य विघटन को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्ति देती देखी गई, साथ ही उन्नयनकारी स्वरूप को प्रकट करते हुए स्वातंत्र्योत्तर परिवेश जन्य जटिलताओं में फंसे व्यक्ति को उबारने तथा उसको दिशा–निर्देशित करती हुई भी प्रतीत हुई।''[1] इस तरह स्वतंत्रता पूर्व के वातावरण से मुक्ति पाकर साहित्यकारो ने समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया। उपन्यासकारों द्वारा समकालीन यथार्थ परिस्थितियों के चित्रण एवं आदर्श की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु मिथकों की आश्चर्यजनक अर्थक्षमता का अन्वेषण कर, नवीन संदर्भों में मिथकों को उपन्यासों में चित्रित किया गया।सन् 1970 ई से पूर्व और स्वतंत्रता के पश्चात् आत्म प्रवचना के युग में जब सारा परिवेश मूल्यहीनता की गवाही दे रहा था, तब समसामयिक सांस्कृतिक संकट को उसके सम्पूर्ण परिपेक्ष्य में समझने एवं सांस्कृतिक विरासत को मानवीय संदर्भों मे उपन्यस्त करने हेतु उपन्यासकारों द्वारा मानव इतिहास एवं जातीय मूल्यवत्त के प्रतीक पुराख्यानों या मिथकीय आशयों को नवीन दृष्टि से व्याख्यायित कर उनके पुनर्नवीकरण के प्रयास किए गए। उक्त दिशा में उपन्यास में मिथक का प्रयोग करने वालों में वीरेन्द्र कुमार जैन सर्वप्रथम उपन्यासकार थें। उन्होनें अपने 'भक्तिदूत' उपन्यास में 'अंजना' तथा 'पवनंजय' के पौराणिक मिथकीय प्रसंग को नवीन ढ़ग से प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् रागेय राघव कृत 'देवकी की बेटा' (1954) एवं 'प्रतिदान' (1957) में मिथकीय चरित्र (पात्र) देखने को मिलते हैं। एक ओर जहाँ 'रागेय राघव' कृत 'देवकी का बेटा' उपन्यास में ''कृष्ण के जीवन की अलौकिक घटनाओं को तार्किक एवं वैज्ञानिक ढ़ंग से प्रस्तुत करके कृष्ण के चरित्र को आधुनिक युगानुरूप बुद्धिवादी और तार्किक दर्शाया गया।''[2] वहीं ''प्रतिदान उपन्यास में आचार्य द्रोण के चरित्र को मानवीय धरातल पर परखकर चमत्कारों से दूर रखकर, यथार्थ के परिपेक्ष्य में मौलिक रूप से उभारा गया है।''[3] इसके पश्चात् आई चतुरसेन शास्त्री कृत 'वयरक्षामं' (1935) उपन्यास में मिथक के रूप में रावण की कथा देखने को मिलती है। इस उपन्यास में राम के स्थान पर रावण को अधिकारिक कथा का आधार बनाया गया, जो अपनी रक्ष संस्कृति की रक्षार्थ, वयरक्षामं (हम रक्षा करेगें) का नारा देता है। रावण दानव है किन्तु उसके सुख–दुख से उद्वेलित होने की मानवीयता का यहाँ चित्रण कर उपन्यास को और भी अधिक कलात्मक बनाया गया है। मिथकीय उपन्यासों का दौर यहीं रूका नहीं। गुरूदत्त द्वारा मिथकों के आधार पर 'उमड़ती घटाएं' (1954), 'अवतरण' (1957), 'सम्भवामि युगे–युगे' (1959) तथा 'विनाशाय च दुष्कृताम्' (1963) आदि मिथकीय उपन्यासों का सृजन किया गया। 'उमड़ती घटाएं' उपन्यास में चन्द्रवंशियों के पूर्वज एवं देवलोक पर सदेह अधिकार प्राप्त करने वाले 'नहुष' की कथा को मिथक के तौर पर लिया गया, जिसे नवीन दृष्टि देकर वैज्ञानिक रूप में ढ़ाला गया। वही 'अवतरण', 'सम्भवामि युगे–युगे' एवं 'विनाशाय च दृष्कृताम' उपन्यासों में मिथक के तौर पर महाभारत की कथा को लिया गया और इसकी बुद्धियुक्त मीमांसा करते हुए वैज्ञानिक रूप में महाभारत कथा के नवीन समाहार का प्रयास किया गया। वृंदावन लाल वर्मा कृत 'भुवनविक्रम' (1957) उपन्यास में मिथक रूप में अयोध्या नरेश रोमकं के पुत्र भुवनविक्रम की कथा को लिया गया तथा पुरूषार्थ एवं धर्म के संयोग कैसे मनुष्य को सफलता प्राप्त होती है? उसका चित्रण किया गया। सन् 1959 में यादव चन्द्र जैन द्वारा लिखित उपन्यास 'आदि सम्राट' में मिथक के रूप में 'प्रलय की कथा' और सम्राट मनु की कथा देखने को मिलती है। यह उपन्यास कथा 'प्रसाद' की कामायनी से प्रेरित है, जिसमें श्रद्धा को कोमलता, भावुकता एवं समर्पण तथा इड़ा को बुद्धि का प्रतीक मानकर तद्युगीन जनमानस को दोनों के समन्वय से ही नव–निर्माण हेतु प्रेरित किया गया।''राहुल सांस्कृत्यायन कृत 'दिवोदास' (1959) उपन्यास में उपन्यासकार द्वारा ऋग्वैदिक काल के मिथकों की यथार्थवादी व्याख्या करते हुए देवासुर–संग्राम को ही आर्यों और दस्युओं के संघर्ष के रूप चित्रित किया गया है।''[4] वहीं 'यशपाल' ने अपने उपन्यास 'अप्सरा का श्राप' में दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला के प्रेम को भूल जाने की कथा को मिथक के तौर पर शामिल कर, स्वार्थी एवं निरंकुश पुरूष को धर्म व व्यवस्था का आड़ लेकर नारी का शोषण करने वाला माना है तथा उन्हें धिक्कारा है। इन उपन्यासों के अतिरिक्त कुछ और उपन्यास मिथकों को आधार बनाकर सन् 1970 से पहले लिखे गए जिनमें बेनीप्रसाद वाजपेयी 'मंजुल' कृत 'दिव्यगंधा' अक्षय कुमार जैन लिखित 'युग पुरूष राम' यज्ञदत्त शर्मा कृत 'देवयानी' एवं 'रजनीगंधा', रमाकांत मिश्र कृत 'कवि वाल्मीकी', इन्दु भुषण सृजित 'अहल्या' तथा अरूण कृत 'उपनिषद् पथ के राही' इत्यादि उपन्यास प्रमुख है।

सन् 1970 के पश्चात् सृजित उपन्यासों में मिथकों में निहित नवीन अर्थ संभावनाओं की खोज की गई तथा इसके द्वारा समकालीन परिस्थितियों के यथार्थ को बौद्धिक धरातल कर उकेरने का प्रयास किया गया। इतना ही नहीं तद्युगीन उपन्यासकारों द्वारा मिथकों के माध्यम से भौतिकता से ग्रसित मानवता और जीवन की क्रूरताओं से उत्पन्न मूल्यहीनता को यथार्थ धरातल पर उकेरने का एक सराहनीय प्रयास भी किया गया। इस दृष्टि से सर्वप्रथम 'लक्ष्मीकांत वर्मा कृत टेराकोटा' उल्लेखनीय। इस उपन्यास में मिथक के तौर पर महाभारत युद्धोत्तर काल के कुछ पात्रों को और उनकी समस्याओं को उठाया गया तथा इन मिथकीय पात्रों और उनकी समस्याओं को युगीन संदर्भों से जोड़ा गया। तत्पश्चात् अमृतलाल नागर कृत 'एकदानैमिषारण्ये', राजीव सक्सेना लिखित 'पाणिपुत्री सोमा' (1972), हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'अनामदास का पोथा' उपन्यासों में मिथक का प्रयोग नवीन दृष्टि के साथ देखने को मिला। 'एकदानैमिषारण्ये' उपन्यास में जहाँ पुराण साहित्य को नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया वहीं 'पाणिपुत्री सोमा' में वैदिक कालीन आर्य–अनार्य संघर्ष को मार्क्सवादी दृष्टि से व्याख्यायित करने की कोशिश की गई। 'अनाम दास का पोथा' उपन्यास में छांदोग्य उपनिषद् के ऋषि 'रैक्य' तथा 'जाबाला' की संवेदक प्रेमकथा को समसामयिक संदर्भो से संबद्ध किया गया। 1976 ई0 में

रघुवीर शरण मिश्रा कृत 'सदा–सदा के प्रश्न' एवं लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'देवीना' उपन्यासों में भी पौराणिक कथा को आधुनिक सामाजिक संदर्भों मे चित्रित किया गया।

उपन्यासों में मिथकीय कथा–वृत्त को समकालीन संदर्भों में समन्वयात्मक रूप से प्रस्तुत करने में स्वतंत्र्योत्तर उपन्यासकारों में 'नरेन्द्र कोहली' जी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। नरेन्द्र कोहली जी कृत 'अभ्युदय' एवं 'अभिज्ञान' तथा 'महासमर' इस दृष्टि से सर्वाधिक उल्लेखनीय है। कोहली जी ने अपनी कृति 'अभ्युदय' (दो खंड) के 'दीक्षा', 'अवसर', 'संघर्ष की ओर' तथा 'युद्ध–1' एवं 'युद्ध–2' नामक उपशीर्षकों में समग्र रामकथा के मिथकीय कथा को युगानुकुल सृजन कर 'रामकथा की पुनर्व्याख्या' का प्रयास किया है। ''दीक्षा'' में कोहली जी ने घटनाओं की दृष्टि से विश्वामित्र के सिद्धाश्रम में राक्षसों के उत्पात से लेकर राम के विवाह और परशुराम की पराजय तक की कथा का सुंदर वर्णन किया है।''विश्वामित्र के माध्यम से दशरथ की राज्य व्यवस्था एवं प्रजा की दुर्दशा का चित्र प्रस्तुत करके वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था एवं सामान्य की त्रासद स्थिति का जीवंत एवं यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। इसके अतिरिक्त वनजा, अहल्या तथा सीता जैसे मिथकीय पात्रों द्वारा तद्युगीन पुरूष प्रधान समाज में नारी की शोचनीय स्थिति को तथा लक्ष्मण द्वारा तद्युगीन युवा असंतोष को प्रस्तुत किया गया है।

वहीं ''अवसर'' में रामकथा के अयोध्या–काण्ड की प्रसंग पर आधृत पौराणिक उपन्यास में आधुनिक परिपेक्ष्य और मूल्य–मानकों के आधार पर, उस प्राचीन कथा के राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक मूल्यों का विश्लेषण किया गया है।'' अयोध्या में चल रहें राजनीतिक षडयंत्र से भयभीत दशरथ की निरंकुशता के माध्यम से 1975 की आपातकालीन तानाशाही के वीभत्स रूप को मुखारित किया गया है, वहीं राक्षासी सभ्यता को आधुनिक संदर्भ में उपनिवेशवादी एवं पूंजीवादी शासन व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस तरह अवसर द्वारा जनक्रांति एवं नारी क्रांति के नवीन स्वरों एवं युगीन प्रश्नों को प्रतिध्वनित करके रामकथा की युगीन व्याख्या का प्रयास किया गया।

संघर्ष की ओर (भाग–1) में जहाँ ''रामायण के अरण्य कांड का परिपेक्ष्य है।''[5] वहीं ''संघर्ष की ओर (भाग–2) में मिथक के तौर पर ''रावण द्वारा सीता का अपहरण करके अशोक वाटिका में रखने की कथा वर्णित है।''[6] इस उपन्यास में राम के माध्यम से राक्षसी व्यवस्था के मूल स्वरूप को उद्घाटित करने के साथ–साथ उत्पादन के साधनों पर एकाधिकार करके जनता का शोषण करने वाली आधुनिक व्यवस्था के वीभत्स रूप का चिणत्र किया गया है। इतना ही नहीं राम द्वारा उत्पादन के साधनों पर श्रमिकों के सामूहिक स्वामित्व की घोषणा के माध्यम से समाजवादी व्यवस्था के आदर्श रूप की भी प्रतिष्ठा गई है।

युद्ध (भाग–1) में मिथक रूप में दुंदुभी की हत्या, बाली का शासन, सुग्रीव का पलायन, राम का सीता की खोज में प्रयाण तथा सीता और लंका की स्थिति आदि का चित्रण मिलता है।''[7] तो वहीं युद्ध (भाग–2) में मिथक रूप में ''लंका में वानर सेना के प्रवेश से रावण वध के बाद विभीषण को अधिकार सौंपने तक की कथा वर्णित की गई है।''[8] इसमें राम–रावण युद्ध को समकालीन संदर्भ में पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति शोषितों के स्वातंत्र्य युद्ध के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार 'अभ्युदय' उपन्यास के संपूर्ण खंडो में पारम्परिक रामकथा का आधुनिक संचेतना के आलोक में नई तार्किक संगति, विवेकसम्मत पुनर्व्याख्या तथा अद्यतन सामाजिक संदर्भों के विनियोग से ऐसा चुनौतीपूर्ण पुनर्निर्माण किया गया है कि इसमें रामकथा के सनातन जीवन मूल्यों और लोक आयामों का नया संधान संभव हो सका। इसी प्रकार नरेन्द्र कोहली कृत 'अभिज्ञान' (1981) उपन्यास में कृष्ण–कथा को, मानवीय संदर्भ देने हेतु सुदामा चरित्र के कोण से उठाकर, सुदामा द्वारा कृष्ण के पास जाने को अध्यात्मक के राजनीति के समक्ष समर्पण के रूप मे प्रस्तुत किया गया। वहीं उनकी एक और कृति 'महासमर' (आठ भाग) सन् 1988 से 2000 ई0 के बीच में प्रकाशित हुई। 'बंधन' से निर्बन्ध' तक आठ भागों मे बँटी इस उपन्यास में महाभारत की सीधी, सपाट व शुष्क कथा को कल्पना के प्रयोग से आकर्षक बनाकर मार्मिक प्रसंगों की उद्भावना, वैचारिक–संघातों एवं अंतर्द्वन्द्वों के चित्रण द्वारा युगीन प्रश्नों पर तर्कपूर्ण चिन्तन प्रस्तुत किया गया।नरेन्द्र कोहली जी के मिथकीय उपन्यासों के पश्चात् भी अन्य मिथकीय उपन्यासों की रचना की गई, जिनमें मनु शर्मा कृत 'द्रोण की आत्मकथा' (1976) 'द्रोपदी की आत्मकथा' (1976), 'कर्ण की आत्मकथा' (1978), 'कृष्ण की आत्मकथा' (1999), देवदत्त अटल कृत 'भागीरथ की बेटी', यादवेन्द्र शर्मा 'चंद्र' कृत 'एक नियति और', यज्ञदत्त शर्मा की 'पंचाली', बी0आर0 पदम् की 'गंधारी', राम प्रकाश शर्मा कृत 'मृत्युंजय भीष्म' (1989) इत्यादि उल्लेखनीय है। उक्त सभी उपन्यास किसी न किसी रूप में पौराणिक कहीं जाने वाली मिथकीय कथा से जुड़ी हुई हैं और तद्युगीन यथार्थ को प्रकट करते रहीं है। किन्तु नरेन्द्र कोहली के उपन्यास इन सभी उपन्यासों से अलग, समाज के सभी क्षेत्रों के युगीन समस्याओं को उजागर करने में अधिक सफल रहे हैं और यही कारण है कि वे अन्य उपन्यासों की तुलना में अधिक लोकप्रिय बन सकें है।

निष्कर्ष

इस प्रकार प्रेमचन्द पूर्व एवं प्रेमचन्द कालों में मिथकों के आधार पर सृजित उपन्यासों से न तो तत्कालीन समाज एवं जीवन के विशिष्ट पक्षों का उद्घाटन हो पाया, न ही तत्कालीन समाज को समझने अथवा तद्युगीन जीवन–मूल्यों की पुर्नव्याख्या का कोई प्रयास ही किया गया और न ही ये उपन्यास जीवन की किसी जटिल समस्या का चित्रण या समाधान प्रस्तुत कर सके। अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता को प्रमाणित करने के उद्देश्य से जिन मिथकीय उपन्यास की रचना हुई, उसमें आधुनिक जीवन की आलोचना न होकर, पुराने विवरणों की सजावट अधिक दिखी। इस कारण ''ऐसे उपन्यास धार्मिक–पुनर्जागरण के स्वर को उग्र रूप देते हैं तथा राष्ट्रीय चेतना के खण्डित स्वरूप को व्यक्त करते हैं।''[9] अतः इन दोनों कालों में मिथक का प्रयोग मात्र उपदेश देने के उद्देश्य से किया गया। मिथक और यथार्थ की समकालीन संगति के अभाव के कारण मिथक पर आधारित उपन्यास मिथकीय उपन्यास की श्रेणी में स्थापित नहीं हो सके।

वहीं स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी उपन्यासों में मात्र मनोरंजन अथवा उपदेशात्मकता के उद्देश्य से मिथकों की पुनरावृति नहीं की गई, अपितु मिथकों में निहित नवीन अर्थ–संभावनाओं का संधान कर, इसके द्वारा समकालीन परिवेश के यथार्थ का सशक्त चित्रण करवाने एवं इसके साथ–साथ आदर्श की स्थापना करने के उद्देश्य से इन मिथकों की पुनरावृति की गई। उपन्यासकारों द्वारा मिथकों को लेकर उपन्यास लिखने के इस क्रम में मिथकों की मूल कथा की यथासंभव रक्षा की गई, साथ ही नवीन संदर्भो में उनकी पुनर्व्याख्या एवं पुनर्रचना का प्रयास भी किया गया।

स्वातंत्र्योत्तरकालीन अन्य उपन्यासकारों की ही भांति 'नरेन्द्र कोहली जी' ने भी इस बात का पुरा ध्यान रखा है कि मिथकीय रचना लिखने के क्रम में मिथकीय कथा के मूल स्वरूप नष्ट न हो। इस बात की पुष्टि उनके मिथक संबंधी विचारों से प्रकट होते है, जिसमें वे कहते हैं – ''मेरी दृष्टि में 'मिथक' या 'पुराकथा' में सबसे बड़ा गुण यही है कि इसे उलट–पलट सकते है..... उसके स्वरूप को बनाए रखते हुए। तुलसी ने जब रामकथा लिखी थी तब वाल्मीकि द्वारा स्थापित 'मिथक' उनके सामने थे.... और मेरे समक्ष

श्रीमद्भागवत् द्वारा स्थापित मिथक थे ..... मैंनें इस चुनौती को स्वीकारा, लेकिन प्रमुख घटनाओं और पात्रों को कही तोड़ा–मरोड़ा नहीं है।''[10]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मिथकीय चेतना : समकालीन संदर्भ– मनोरमा मिश्र सं0 2007–पृष्ठ सं0 265।
2. चुघ, सत्यपाल : हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासः प्रतिमान एवं विकासेतिहास दिल्ली, कोणार्क प्रकाशन प्र0स0 1978, पृष्ठ सं0 345।
3. पूर्ववत्, पृष्ठ सं0 346।
4. राय, गोपाल : हिन्दी उपन्यास का इतिहास, नई दिल्ली, राजकमल, प्र0सं0 2002, पृष्ठ सं0 369।
5. रामकथा कालजयी कथा–के0सी0 सिन्धु, वाणी प्रकाशन,सं0 2007, पृष्ठ सं0 74।
6. वही, पृष्ठ सं0 74।
7. वही, पृष्ठ सं0 84।
8. वही, पृ0 सं0 122।
9. पाण्डेय, शिवदान : मिथकीय उपन्यासों की जनोन्मुखता (निबंध), संकलित–शंभुनाथः मिथक और भाषा, पृष्ठ 187।
10. नरेन्द्र कोहली,7 जनवरी 1995 को हितेन्द्र यादव को दिया गया साक्षात्कारः पौराणिक उपन्यासः समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ सं0 30।